अग्निरेखा

अग्निरेखा

महादेवी



राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

प्रकाशकीय

महादवीजी की यह अंतिम काव्यकृति है और उनकी अनुपस्थिति मे पहली। इसलिए इसका प्रकाशन जहाँ हमार हृदय को गौरव और हर्षानुभूति स भर रहा है, वही उनक न हान की टीस का भी गहरा रहा है।

इसके प्रकाशन सदर्भ म यह तथ्य रोमांचित करता है कि इसका नाम उन्ही का रखा हुआ है और पाडुलिपि पर भी एक हद तक वे स्वय कार्य कर गई थी। फिर भी ऐसी अनेक रचनाएँ थी, जो बाद मे मिली और पाडुलिपि मे शामिल की गई, और कुछ ऐसी थी, जिनके एकाधिक प्रारूप उपलब्ध थ।

महादेवी जी की इन कविताआ का सम्यक् मूल्याकन ता सुहृदय और विद्वत समाज स्वय करेगा लेकिन उनके सर्वमान्य और स्थापित काव्य-स्वर से इनका स्वर निश्चय ही भिन्न है। किंचित परुष और आग्नेय। इन्हे पढत हुए लगातार उस विषम काल प्रवाह का अनुभव होता है, जो पिछल एक डेढ दशक से महादेवीजी को क्षुब्ध और अशात किए हुए था।

आशा है हिंदी जगत मे, ऐतिहासिक महत्त्व की इस काव्यकृति का यथायोग्य स्वागत होगा।



महीयसी महादेवी

अंतिम स्वप्न

पथ जाता था नहीं पहचान की बेला।
न परिचय भूल की बेला।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

नहीं पहचान की बेला
न परिचय भूल का मेला।
पथ जाता था नहीं पहचान की बेला।

महादेवीजी की हस्तलिपि मे एक कवितांश

क्रम

अग्नि-स्नवन

पर्व ज्वाला का, नही वरदान की वेला।
न चन्दन फूल की वेला।

चमत्कृत हो न चमकीला
किसी का रूप निरखेगा,
निठुर होकर उसे अगार पर
सौ वार परखेगा
खरे की खोज है इसको, नही यह क्षार से खेला।

किरण ने तिमिर स माँगा
उतरने का सहारा कब?
अकेले दीप ने जलते समय
किसको पुकारा कब?
किसी भी अग्निपथी को न भाता शब्द का मेला।

किसी लौ का कभी सन्देश
या आह्वान आता है?
शलभ का दूर रहना ज्योति से
पल भर न भाता है।
चुनौती का करेगा क्या, न जिसने ताप को झेला।

खरे इस तत्व से लौ का
कभी टूटा नही नाता
अबोला, मौन भाषाहीन
जलकर एक हो जाता।
मिलन-बिछडन कहाँ इसमे, न यह प्रतिदान की वेला।

सभी का देवता है एक
जिसके भक्त हैं अनगिन,
मगर इस अग्नि-प्रतिमा मे
सभी अगार जाते बन।
इसी मे हर उपासक को मिला अद्वैत अलबेला।

न यह वरदान की वेला
न चन्दन फूल का मेला।
पर्व ज्वाला का, न यह वरदान की वेला।

गीत

पूछो न प्रात की बात आज
आँधी की राह चलो।

जाते रवि ने फिर देखा क्या भर चितवन मे?
मुख-छबि बिबित हुई कणो के हर दर्पण मे!
दिन बनने के लिए तिमिर को
भरकर अक जलो!

ताप बिना खण्डो का मिल पाना अनहोना,
बिना अग्नि के जुडा न लोहा-माटी-सोना।
ले टूटे सकल्प-स्वप्न उर-
ज्वाला मे पिघलो!

तुमने लेकर तिमिर-भार क्या अपने काँधे,
तट पर बाँधी तरी, चरण तरिणी मे बाँधे?
कडियाँ शत-शत गल स्वय
अगारो पर बिछलो।

रोम-रोम में वासन्ती तरुणाई झाँकी,
तुमने देखी नही मरण की वह छवि बाँकी!
तिमिर-पर्व में गलो अजर
नूतन में आज ढलो!
आज आँधी के साथ चलो!

गीत

वशी में क्या अब पाञ्चजन्य गाता है?

शत शेष-फणो की चल मणियो से अनगिन,
जन्न-जल उठते हैं रजनी के पद-अकन,
केचुल-सा तम-आवरण उतर जाता है।

छू अनगढ समय-शिला को ये दीपित स्वर,
गढ छील, कणो को बिखराते धरती पर,
आकार एक ही, पर निखरा आता है।

लय ने छू-छूकर यह छायातन सपने,
कर दिये जगा, जाने-पहचाने अपने,
चिर सत्य पलक-छाया म मँडराता है।

मघो म डूबा सिन्धु किरण मे आँधी,
एक ही पुलिन ने जीवन-सरिता बाँधी,
अब आर-पार-तरिणी से क्या नाता है?

शत-शत वसन्त पतझर म बोल हौले,
तम म, विहान मनुहारे करते डोले,
हर ध्वस-लहर म जीवन लहराता है।

वशी म क्या अब पाञ्चजन्य गाता है?

गीत

आँखो मे अजन-सा
आँजो मत अधकार।

तिमिर मे न साथ रही
अपनी परछाई भी,
सागर नभ एक हुए
पर्वत औ' खाइ भी,
मध की गुफाओ मे बन्दी जो आज हुआ,
सूरज वह माँग रहा
तुमसे अब दिन उधार।

कुडली मे कसता जग
क्षितिज हुआ महाव्याल
शृखला बनाती है
क्षण-क्षण का जोड काल,
रात ने प्रभजन की आहट भी पी ली है,
दिशि-दिशि ने प्रहरो के
मूँद लिए वज्र-द्वार।

हीरक नही जो जडे
मुकुटो म जात हैं,

मोती भी नही है
इन्हे वेध कौन पाते है?
ज्वालामुखियो मे पले सपने ये अग्नि-विहग
लपटो के पखो पर
कर लेगे तिमिर पार।
विश्व आज होगा
चिनगारियो का हरसिंगार।

गीत

किस तरग ने इसे छू लिया
मन अब लहरो-सा बहता है !

पाल उडा डाले पक्षी-से,
नभ की ओर खोलकर इसने,
फिर फेकी पतवार अतल मे
तरणी आज डुबा दी इसने।
अब न किसी तट पर रुकने का
यह कोई बधन सहता है!
लहरो मे ही मन बहता है!

लहरे बहती किस सागर म
सागर मिल जाता है किसमें,
ज्ञात नही किस तट से आया
अब यह ठहरेगा किस तट मे,
देश ज्ञात ही नही ध्यान
इसको न कभी दिशि का रहता है!
मन अब लहरों-सा बहता है!

पहुँचेगा यह वही जहाँ
इसको प्रवाह यह पहुँचाएगा!

लक्ष्य वही इसका होगा
जिसको यह सागर बतलाएगा।
पाल, तरी, पतवारें, भूला
अपने को सागर कहता है।
लहरों-सा ही मन बहता है।

गीत

नभ आज मनाता तिमिर-पर्व,
धरती रचती आलोक-छद।

नीला सहस्रदल - अधकार
खिल घेर रहा दिशि-चक्रवाल।
तृण-कण को केशर-किंशुक कर
लौ की जलती निधियाँ सँभाल,
उड धूम-पख पर चले विकल
दीपक-अलियों के वृद-वृद।

लहराया सागर-सा विषाद
जीवन के तट डूबे अजान,
स्वप्नों की रत्नच्छाय तरी
तिरती लपटों के पाल तान।
ज्योतिस्पदन से भेट धरा
लहरा मे भरती विधु स्पद।

हिम से आँसू-कण वेध रहे
चितवन के झीने स्वर्ण-तार,
दिन के पथ में उजले पील
बरसे आभा के हर्रसिंगार,

उर के अगारक-पाटल से
छलका यह किरणों का मरद।

ज्वाला के साँचे में ढाला
भू ने अपना नवनीत प्रात।
शतअर्चि-शिखाओमेंपुलकित
लेकर अपना चिर श्याम गात
वालारुण के छाया-पग से
लौटी जाती निशि मद-मद।

स्वर-ताल हो गए चक्र-युगल
औ' अक्ष वन गई लय भास्वर,
यति मे है गति की रश्मि सजग
अक्षर-अक्षर के वाह अजर,
दीपक-पथ से नभ ओर चला
रज के गीतों का अग्नि-स्यद।

अनमिल दीपों मे स्नेह एक
वर्ती शत ज्वलन-पिपास एक,
दीपों को रखता क्षार भिन्न
शलभो को करती आग एक।
साँसों के निर्झर ने बाँधा
जड का ज्वाला का अमिट द्वद्व।

गीत

यह व्यथा की रात का कैसा सबेरा है?

ज्योति-शर से पूर्व का
रीता अभी तूणीर भी है,
कुहर-पंखों से क्षितिज
रूँधे विभा का तीर भी है,
क्यों लिया फिर श्रांत तारों ने बसेरा है?

छंद-रचना-सी गगन की
रंगमय उमड़े नहीं घन,
विहग-सरगम में न सुन
पड़ता दिवस के यान का स्वन,
पंक-सा रथचक्र में लिपटा अँधेरा है।

गर्वीली पथ में पगों को
साँस की जंजीर दुहरी,
जागरण के द्वार पर
सपने बने निस्तंद्र प्रहरी,
नयन पर सूने क्षणों का अचल घेरा है।

दीप को अब दूँ विदा, या
आज इसमें स्नेह डालूँ?
दूँ बुझा, या ओट में रख
दग्ध बाती को सँभालूँ?
किरण-पथ पर क्या अकेला दीप मेरा है?
यह व्यथा की रात का कैसा सवेरा है?

आलोक पर्व

घन तिमिर मे हो गया प्रहरी यही दीपक हमारा।
हैं अमर निधियाँ तुम्हारी
दीप माटी का हमारा!

सप्त - अश्वारथ सहस्रो
रश्मियाँ जिसको मिली थी,
और बारह रग की
तेजसमयी आकृति खिली थी,

छू सकी जिसको न आँधी
रोकता कब है प्रभजन?
उदयगिरि की भी शिलाएँ
रोकती जिसका न स्यदन!
जग डुबाकर डूब जाता यह अमर दिनकर तुम्हारा!
दीप माटी का हमारा!

ढालती धरती इसे जब
प्राण ज्वाला मे तपाती,
और कोमल फूल ही से
तूल की बाती बनाती,

स्नेह की हर बूँद सबसे
माँगकर इसमे मिलाती,
चेतना का ऋण सभी से
ले उसी से लौ जलाती,
पुत्र धरती का यही है जो कभी तम से न हारा।
दीप माटी का हमारा।

तिमिर का बदी हुआ है,
अब गगनचुम्बी हिमालय,
सिंधु की उत्तुग लहरो का,
हुआ अस्तित्व भी लय,

दिवस शिल्पी के उकेरे
चित्र अब अनगढ शिला है,
किंतु रवि का दाय लेने का
किसे साहस मिला है?
नमन कर सबको चुनौती-सी ज्वलित लौ को सँवारा।
दीप माटी का हमारा।

काल की उच्छल तरगो मे
चला दीपक अकेला।
कौन-सी तम की चुनौती
है जिसे इसने न झेला?

दृष्टि-धन बाँटा सभी को
छद आकृति को दिया है,

है अमा का पर्व इससे दीप्त दोपहरी तुम्हारा।
दीप माटी का हमारा।

छिन्न जीवन-पृष्ठ जिन पर
अनलिखी दुख की कथाएँ,
और बिखरे पृष्ठ जिन पर,
बोलती सुख की प्रथाए,

ज्योति-कण से बीन इसने
सब सँजोये, स्वप्न खोये,
काल लहरो मे उगे जो
नये जीवन बीज बोये।
बॉच देखो बन गया यह मर्म का छान्दस् तुम्हारा।
दीप माटी का हमारा।

एक मे अब जल उठे
दीपक सहस्रो शेष क्या है?
आज लौ का मोल क्या है
काल क्या है देश क्या है?
बाट [illegible] यह सभी आलोक
[illegible] [illegible] लौट आए
क्या [illegible] पथ मे छिपे यह
जो [illegible] मे मुस्कराए

यह न माँगेगा तिमिर के सिंधु से कोई किनारा।
यह सजग प्रहरी तुम्हारा,
दीप माटी का हमारा।

गीत

बाँच ली मैंने व्यथा की बिन लिखी पाती नयन म।
मिट गए पदचिह्न जिन पर
हार छाला ने लिखी थी,
खो गए सकल्प जिन पर
राख सपनो की बिछी थी,
आज जिस आलोक ने सबको मुखर चित्रित किया है
जल उठा वह कौन-सा दीपक बिना बाती नयन मे।

कौन पथी खो गया अपनी
स्वय परछाइयो में,
कौन डूबा है स्वय कल्पित
पराजय - खाइयो मे,
लीक जय-रथ की इस तुम हार जीवन की न मानो,
कौंधकर यह सुधि किसी को आज कह जाती नयन में।

सिधु जिसको माँगता है
आज वडवानल बनाए,
मेघ जिसको माँगता
आलोक प्राणों में जलाए,
आँसुओ का ज्वार भी जिसको डुबा पाता नहीं है
कौन जल मे रख गया है ज्वाल की थाती नयन मे?

अब नही दिन की प्रतीक्षा है
न माँगा है उजाला,
श्वास ही अब लिख रही
चिनगारिया की वर्णमाला।
अश्रु की लघु बूँद मे अवतार शत-शत सूर्य के हैं
अब दबे पैरो उषाएँ लौट जाती हैं नयन मे।

बाँच ली मैंने व्यथा की बिन लिखी पाती नयन मे।

गीत

दीपक, अब रजनी जाती रे!

जिनके पाषाणी शापों के
तूने जन-जन बंध गलाए,
रंगों की मूठें तारों के
खील वारती आज दिशाएँ,
तेरी खोयी साँस विभा बन
भू से नभ तक लहराती रे!

लौ की कोमल दीप्त अनी से
तम की एक अरूप शिला पर,
तूने दिन के रूप गढ़े शत
ज्वाला की रेखा अंकित कर,
अपनी वृति में आज अमरता
पाने की बेला आती रे!

धरती ने हर कण सौंपा,
उच्छ्वास शून्य विस्तार गगन ने,
न्यास रहे आकार, धरोहर
स्पन्दन की सौंपी जीवन ने,
अंगारों के तीर्थ! स्वर्ण कर
लौटा दे सब की थाती रे!
दीपक अब रजनी जाती रे!

ओ विषपायी

यह तो वह विष नही, मिला जो
तुम्हे क्षीर-सागर-मथन से,
जो शीतल हो गया तुम्हारे
शीतल गगा के जलकण से,
क्षीर सिधु की लहरो मे पल,
विधु की विमल चॉदनी मे मिल,
होकर गरल अमृत की जिसने
सहज सहोदरता थी पाई।
ओ विषपायी।

पान किया पर तुमने इसका
शिरा शिरा म नही उतारा,
क्वु कठ म अब तक है जा
नीला लाछन बना तुम्हारा।
ज्वलित नयन की चितवन मे छन,
भस्म हुआ कब बना रसायन,
तम मृत्युजय रहे किंतु है
महा मृत्यु जिसकी परछाईं।
आ विषपायी।

पर जीवन सागर-मथन से
निकला है जो घोर हलाहल,
वह विष का नवनीत महाविष,
जिससे दग्ध काल के युग पल,
पलका के सम्पुट मे भरकर
कुछ आँसू की बूँद मिलाकर,
विष को अमृत किया मनुज ने
अपने लिए मृत्यु अपनाई
ओ विषपायी!

तब से दोनो साथ चल रहे
जहाँ आदि है वही अत है,
रात, दिवस-किरणे बुनती हैं
पतझर ही लाता वसत है!
फूल खिलाने पत्र झरे हैं,
रीते होने मेघ भर हैं।
नही मृत्यु पर विजय, मरण से
मानव ने नूतनता पाइ!
ओ विषपायी!

रुद्र, तुम्हारा महानाश
का नर्तन ताडव
आज हमारे लिए हुआ
नवजीवन - उत्सव,
नही स्वप्न से आँख रीती
स्वर्ग नही यह धरती जीती!
जिसमे जन्म नही मुस्काया
हुई पुरातन वह तरुणाई!
ओ विषपायी!

गीत

रात के इस सघन अँधेरे से जूझता
सूर्य नही, जूझता रहा दीपक।

कौन-सी रश्मि कब हुई कम्पित,
कौन आँधी वहाँ पहुँच पाई ?
कौन ठहरा सका उसे पल-भर,
कौन-सी फूँक कब बुझा पाई ?
ज्योतिधन सूर्य है गगन का ही,
पर तुम्हारा सृजन यही दीपक।

यत्न से वर्तिका बनाई थी
स्नेह अनुराग से अथक ढाला,
खाज अगार जब लिया तुमसे,
तब कही लौवती हुई ज्वाला।
शिल्प यह प्राण का तुम्हारा है
सूर्य से लघु नही कभी दीपक।

देव मंदिर कुटीर चौराहा
हो जहाँ अधतम इसे धर दो,
दीप आकाश का बना दो या
तुम समर्पित तरग को कर दो

यह तुम्हारे अमर समर्पण की
एक पहचान-सा जला दीपक।

सिंधु में पोत पथ पा लेंगे
हर कुटी ज्योति द्वीप-सी होगी
गह में फिर पथिक न भूलेंगे
दृष्टि आलोक सीप-सी होगी
तुम भले प्रात ही वुझा देना
रात में सूर्य से वडा दीपक।

यह तुम्हारा सृजन जला दीपक।

गीत

सृजन के विधाता। कहो आज कैसे
कुशल उँगलियो की प्रथा तोड दोगे?
अमर शिल्प अपना बना तोड दोगे?

युगो मे गढे थे धवल-श्याम बादल,
न सपने कभी विजलियो ने उगाए
युगों में रची साँझ लाली उषा की
न पर कल्पना - विंब उनमें समाये
वनाए तभी तो नयन दो मनुज के
जहाँ कल्पना - स्वप्न ने प्राण पाए।
हँसी में खिली धूप मे चाँदनी भी
दृगों में जले दीप मे मेघ छाए।
मनुज की महाप्राणता तोडकर तुम
अजर खड इसके कहाँ जोड दोगे?

वनाए गगन और ज्योतिष्क कितने,
बिना श्वास पाषाण ही की कथा है,
युगों में वनाए भरे सात सागर
तृषित के लिए घूँट भी चिर कथा है।
कुलिश-फूल दोनों मिलाकर तुम्हीने

गढी नींद में थी कभी एक झाँकी
सजग हो तराशा किए मूर्ति अपनी,
कठिन और कोमल सरल और बाँकी।
लिए शिव चली जो अथक प्राण गगा,
इसे किस मरण सिंधु में मोड दोगे?

बने हैं भले देव मंदिर अनेको
सभी के लिए एक यह देवता है,
म्वय तुम रहे हो सदा आवरण में
इसी मे उजागर तुम्हारा पता है।
सदा अधबनी मूर्ति देती चुनौती,
इसी को कलशदीप्त मंदिर मिलेगा,
न ध्वनि शख की है, न पूजन न वदन,
गहन अध तम मे न दीपक जलेगा।
सृजन के विधाता इसी शून्य मे क्या
मनुज देवता अधबना छोड दोगे?
कुशल उँगलियों की प्रथा तोड दोगे?
अजर शिल्प अपना वना तोड दोगे।

हिमालय

इद्रधनुष पर बाण चढा विद्युत् फूलों के
कामदेव-सा घिर-घिरकर आता है बादल,
नही वेध पाता पाषाणी कवच तुम्हारा
नही खुला पाता आग्नेयी नयन अचचल,
समाधिस्थ तुम रहे सदा ही मौन हिमालय!

शुभ्र हिमानी प्रज्ञा का रख जटाजूट शिर
बैठे हो युग-युग से किसके ध्यानमग्न-मन
रोम-रोम से तुम पाषाणी कवच हो गए
वज्र हो गया पुण्य घाटियोंवाला मृदुतन
यह अबूझ तप है किसके हित मौन हिमालय?

दावानल लेकर आँधी के झोंके आते
छूकर तुमको मलय समीरण वन-वन जाते,
कभी अग्निमय कभी चदनी किरणें लेकर
रवि-शशि आते किंतु हार पग पर रख जाते,
नही अर्चना-पूजा की भी साध हिमालय!

ताप दग्ध रविकर से होकर व्याकुल जिस दिन
धरती करती शब्दहीन-सा प्यासा क्रदन,

शत-शत कवच अभेद्य भेदकर सहस्रार तक
पहुँची है नीरव पुकार भी तुम तक उस क्षण,
कैसा है यह कवच शिला का मौन हिमालय।

ध्यान भग टूटी समाधि खुल जाती पलके
दुख की करुण पुकार बना जाती आकुल मन
नही नयन मे किंतु जलानेवाली ज्वाला
झलका एक बूँद जल ही का तरल अश्रुकण।
करुणा की गगा होती क्या स्रवित हिमालय।

शिव के जटाजूट की प्रति लट में विचरण कर
इसने कर दी शात तीसरे दृग की ज्वाला
ताण्डवरत पग थाम लिया है इसने झुककर
रुद्र-चरण को पहना दी लहरों की माला।
द्रवित हृदय की वन्या है यह मौन हिमालय।

सिंह-वृषभ औ' अहि-मयूर का द्वेष शमन कर
संधिपत्र लहरो मे लिखवा एक किया है
नही भस्म से नही गरल से विषपायी का
एक बूँद आँसू से ही अभिषेक किया है।
कर नूतन सर्जना रहे हो मौन हिमालय।

अब धरती का रोम-रोम है विद्ध शरो से
शर-शैया पर व्याप्त गूँजता आकुल रोदन,
द्रवित न होगे प्राण न हलचल से अस्थिर मन
करुणा की गगा का होगा क्या न अवतरण?
क्या यह नूतन जन्म तुम्हारा मौन हिमालय।

क्या मरु का विस्तार हो गया वह करुणा-कण
फूलों की मधुहँसी प्यास का क्षार हो गई,
यह किसका अभिशाप तुम्हें घेरे है गिरिवर?
वह नवनीत हिमानी अब पाषाण हो गई।
किन चरणों की राह देखते आज हिमालय?

बापू को प्रणाम *

हे धरा के अमर सुत! तुझको अशेष प्रणाम।
जीवन के अजस्र प्रणाम!
मानव के अनत प्रणाम!
दो नयन तेरे धरा के अखिल स्वप्नो के चितेरे,
तरल तारक की अमा मे बन रहे शत-शत सवेरे,
पलक के युग शुक्ति-सम्पुट मुक्ति-मुक्ता से भरे ये,
सजल चितवन मे अजर आदर्श के अकुर हरे ये,
विश्व जीवन के मुकुर दो तिल हुए अभिराम।
चल क्षण के विराम! प्रणाम!

वह प्रलय उद्दाम के हित अमिट वेला एक वाणी,
वर्णमाला मनुज के अधिकार की भू की कहानी,
साधना अक्षर अचल विश्वास ध्वनि-सचार जिसका,
मुक्त मानवता हुई है अर्थ का ससार जिसका,
जागरण का शख-स्वन, वह स्नेह-वशी-ग्राम।
स्वर-छादस् विशेष! प्रणाम!

साँस का यह ततु है कल्याण का नि शेष लेखा,
घेरती है सत्य के शत रूप सीधी एक रेखा,

*पूज्य बापू को श्रद्धाजलि।

नापते निश्वास बढ-बढ लक्ष्य है अब दूर जितना,
तोलते हैं श्वास चिर सकल्प का पाथेय कितना?
साध कण-कण की सँभाले कप एक अकाम।
नित साकार श्रेय। प्रणाम।

कर युगल बिखरे क्षणों की एकता के पाश जैसे,
हार के हित अर्गला, तप-त्याग के अधिवास जैसे,
मृत्तिका के नाल जिन पर खिल उठा अपवर्ग-शतदल,
शक्ति की पवि-लेखनी पर भाव की कृतियाँ सुकोमल,
दीप लौ सी उँगलियाँ तम-भार लेती थाम।
नव आलोक-लख। प्रणाम।

स्वर्ग ही के स्वप्न का लघुखड चिर उज्ज्वल हृदय है,
काव्य करुणा का, धरा की कल्पना ही प्राणमय है,
ज्ञान की शत रश्मियो स विच्छुरित विद्युत छटा-सी
वेदना जग की यहाँ है स्वाति की क्षणदा घटा सी
टेक जीवन-राग की उत्कर्ष का चिर याम।
दुख के दिव्य शिल्प। प्रणाम।

युग चरण दिव औ' धरा की प्रगति पथ में एक कृति है,
न्यास मे यति है सृजन की, चाप अनुकूला नियति है,
अक हैं रज-अमरता के सँधि-पत्रो की कथाएँ,
मुक्त गति में जय चली, पग से बँधी जग की व्यथाएँ
यह अनत क्षितिज हुआ इनके लिए विश्राम।
मसृति-सार्थवाह। प्रणाम।

शेष शोणित-बिंदु नत भू-भाल पर है दीप्त टीका,
यह शिराएँ शीर्ण रसमय कर रही स्पदन सभी का,
ये सृजनजीवी, वरण से मृत्यु के कैसे बनी हैं?
चिर सजीव दधीचि! तेरी अस्थियाँ सजीवनी हैं!
स्नेह की लिपियाँ दलित की शक्तियाँ उद्दाम!
इच्छाबध मुक्त! प्रणाम!

चीरकर भू-व्योम को प्राचीर हो तम की शिलाएँ,
अग्निशर-सी ध्वस की लहरे जला दे पथ-दिशाएँ,
पग रहें सीमा, बने स्वर रागिनी सूने निलय की,
शपथ धरती की तुझे औ' आन है मानव-हृदय की,
यह विराग हुआ अमर अनुराग का परिणाम!
हे असिधार-पथिक! प्रणाम!

शुभ्र हिम-शतदल-किरीटिनि, किरण-कोमल-कुतला जो,
सरित-तुग-तरगमालिनि, मरुत-चचल-अचला जो,
फेन-उज्ज्वल अतल सागर चरणपीठ जिसे मिला है,
आतपत्र रजत-कनक-नभ चलित रगो से घुला है,
पा तुझे यह स्वर्ग की धात्री प्रसन्न प्रकाम!
मानव-वर! असख्य प्रणाम!

विदा-वेला।*

यह विदा-वेला।
अर्चना-सी आरती-सी यह विदा-वेला।

धूलि की लघु वीण ले छू तार मृदु तृण के लचीले,
चुन सभी बिखरे कथा-कण हास-भीने अश्रु-गीले,
गीत मधु के, राग घन के, युग विरह के, क्षण मिलन के,
गा लिए जिसने सभी स्वर नमित भू, उन्नत गगन के,
साथ जिसकी उँगलियो के सृजन-पारावार खेला,
आज अभिनव लयवती उसकी विदा-वेला।
अमर वेला।

पथ पर आरोह के, चिर सत्य के उपहार घूमें,
पुलिन पा अवरोह के, रस-रूप-रँग के ज्वार झूमे,
शरद-स्मिति-सी दूध धोई, अतल मधु जल मे भिगोई,
आँसुओ के कुन्द वन-सी रागिनी पल-भर न सोई।
कठ मे जिसके हुआ है हर चिरतन स्वर नवेला।
यह उसी की मूर्च्छना शिंजित विदा-वेला।
अमर वेला।

---

* कवीन्द्र रवीद्र के महाप्रस्थान पर लिखित।

तप बना आकाश विस्तृत साधना सुख का सबेरा,
साध्य-रगों से भरा अनुराग था सबका बसेरा,
गीत में जयघोष भी था हास मे आलोक भी था,
शक्ति-झंझा मे बसा नवनीत हिम का लोक भी था।
वह चली करुणा-सरित ले साथ अपने तडित्-वेला।
वीण-नंदित, शख-वंदित यह विदा-वेला।
अमर वेला।

धीर वट की दी न नीप अशोक मन-विश्राम की दी,
ज्वाल में उसने हमे नित छाँह प्रेमिल प्राण की दी।
छवि धरा की ले नयन मे भर व्यथा के छद मन मे,
बाँध आकुल विश्व का सदेश सब प्रस्थान-क्षण मे,
मृत्यु के चिर श्याम अचल मे चला करने उजेला।
यह उसी आलोक वाही की विदा-वेला।
अमर वेला।

वह चला जिसके पगो ने शूल फूल बना समेटे,
वह चला जिसके दृगो ने सत्य कर-कर स्वप्न भेटे,
पुलक से सब क्षण बसाए साँस से कण-कण मिलाए,
अमर अकुर साध के चिर प्यास के मरु मे उगाए,
अक जिसके रह गए बन दीपको का एक मेला।
आज दीपाली हुई उसकी विदा–वेला।
अमर वेला।

जो क्षितिज के पार पहुँचे, ओ विहग! वह लय मिलाओ,
भर दिशाएँ शून्य छलकाकर सुमन! साँसे लुटाओ,

दीन अब चातक न बोले वात घायल-सी न डोले,
बढ अलक्षित तीर छू ले धीर सागर आज हौले,
अब चला गायक धरा का हँस अमग पथ म अकेला।
ध्वनित अंतिम चाप से उसकी विदा-वेला!
अमर वेला!

सौंप दी वह वीण उसने रिक्त कर ली आज झोली,
सब लुटाकर सिद्धियाँ पुलकित करो से नाव खोली,
मन कहा निस्पद तम है, वह अमर तट चिर अगम है,
प्राण मे सकल्प उसकी भृकुटिया पर दीप्त श्रम है।
बधनो की चाह स वह मुक्ति-पथ में भी दुकेला,
अजर वरदानी अतिथि की यह विदा-वेला।
अमर वेला।

जग उठ मधुमास बन पतझार सब जिसक सहारे,
आज क्या प्रतिदान मे देगे उसे दो बूँद खारे?
कलश जीवन स्नेह जल हो हर नयन शतदल कमल हो,
पथ शुभ' निश्वास औ' साँसे कहे 'चिर मिलन पल हो'।
भेट मे उसको हृदय विश्वास का ससार दे ला!
स्वर्ग-भू की सधि-सी है यह विदा-वेला!
अमर वेला।

स्वर-निमंत्रित हम चल कब सुन कथा का शेष पाया,
चाप मे आहूत पहचाने न पथ का अत आया,
स्वस्ति जीवन क पुजारी! स्वस्ति सत्-चित्-पथ चारी!

स्वस्ति लय जो बन चुकी है आज उर-कपन हमारी।
स्वस्ति यह सुधि पा जिसे हमने विरह का भार झेला।
यह तुम्हारे हास से रंजित विदा-वेला।
यह हमारे अश्रु से सिंचित विदा-वला।
अमर वेला।

बग-वदना *

बग-भू शत वदना ले।
भव्य भारत की अमर कविता हमारी वदना ले।

अक मे झेला कठिन अभिशाप का अगार पहला,
ज्वाल के अभिषेक से तूने किया शृगार पहला,
तिमिर-मागर हरहराता,
सतरण कर ध्वस आता,
तू मनाती ले हलाहल घूँट मे त्यौहार पहला,
नीलकंठिनि! सिहरता जग स्नेह कोमल-कल्पना ले।

वणुवन मे भटकता है एक हाहाकार का स्वर,
आज छाले-से जले जो भाव-से थे सुभग पाखर,
छद-से लघु ग्राम तेरे,
खेत लय-विश्राम तेरे,
बह चला इन पर अचानक नाश का निस्तब्ध सागर!
जो अचल वेला बने तू आज वह गति-साधना ले।

शक्ति की निधि अश्रु से क्या श्वास तेरे तालते हैं?
आह तेरे स्वप्न क्या ककाल बन-बन डालते हैं?

---

* बगाल के अकाल पर लिखित।

अस्थियो की ढेरियाँ हैं,
जम्बुकों की फेरियाँ हैं?
'मरण केवल मरण' क्या सकल्प तेरे बोलते हैं?
भेट मे तू आज अपनी शक्तियो की चेतना ले।

किरण-चर्चित, सुमन-चित्रित, खचित स्वर्णिम बालियो से
चिर हरित पट है मलिन शत-शत चिता-धूमालियो से,
गृद्ध के पर छत्र छाते,
अब उलूक विरुद सुनाते,
अर्घ्य आज कपाल देते शून्य कोटर-प्यालियो से।
मृत्यु क्रदन गीत गाती हिचकियो की मूर्च्छना ले।

भृकुटियो की कुटिल लिपि मे सरल सृजन विधान भी दे,
जननि अमर दधीचियों को अब कुलिश का दान भी दे,
निशि सघन बरसातवाली,
गगन की हर साँस काली,
शून्य धूमाकार म अब अर्चियो का प्राण भी दे।
आज रुद्राणी। न सो निष्फल पराजय-वेदना ले।

तुग मंदिर के कलश को धो रहा 'रवि' अशुमाली,
लीपती आँगन विभा से वह 'शरद' विधु की उजाली,
दीप-लौ का लास 'बंकिम'
पूत-धूम 'विवेक' अनुपम,
रज हुई निर्माल्य छू 'चैतन्य' की कपन निराली,
अमृत-पुत्र पुकारते तेरे अजर आराधना ले।

बोल दे यदि आज, तेरी जय प्रलय का ज्वार बोले,
डोल जा यदि आज, तो यह दम्भ का ससार डोले,
उच्छ्वसित हो प्राण तेरा,
इस व्यथा का हो सवेरा,
एक इंगित पर तिमिर का सूत्रधार रहस्य खोले।
नाप शत अतर्क सके यदि आज नूतन सर्जना ले।

भाल के इस रक्त-चदन मे ज्वलित दिनमान जागे,
मद्र सागर तूर्य पर तेरा अमर निर्माण जागे,
क्षितिज तमसाकार टूटे,
प्रखर जीवन-धार फूटे,
जाह्नवी की ऊर्मियाँ हो तार भैरव-राग जागे।
ओ विधात्री। जागरण के गीत की शत अर्चना ले।

ज्ञान-गुरु इस देश की कविता हमारी वदना ले।
बग–भू शत वदना ले।
स्वर्ण-भू शत वदना ले।

गीत

अश्रु यह पानी नही है, यह व्यथा चदन नही हे।

यह न समझो देव पूजा के सजीले उपकरण ये,
यह न मानो अमरता से माँगने आए शरण ये,
स्वाति को खोजा नही है औ' न सीपी को पुकारा,
मेघ से माँगा न जल, इनको न भाया सिधु खारा।
शुभ्र मानस से छलक आए तरल ये ज्वाल मोती,
प्राण की निधियाँ अमोलक बेचने का धन नही है।
अश्रु यह पानी नही है, यह व्यथा चदन नही है।

नमन सागर को नमन विषपान की उज्ज्वल कथा को
देव-दानव पर नही समझे कभी मानव प्रथा को,
कब कहा इसने कि इसका गरल कोई अन्य पी ले,
अन्य का विष माँग कहता हे स्वजन तू और जी ले।
यह स्वय जलता रहा देने अथक आलोक सब को
मनुज की छवि देखने को मृत्यु क्या दर्पण नही है।
अश्रु यह पानी नही है, यह व्यथा चदन नही है।

शख कब फूँका शलभ ने फूल झर जाते अबोले,
मौन जलता दीप, धरती ने कभी क्या दान तोले?

खो रहे उच्छ्वास भी कब मर्म गाथा खोलते हैं,
साँस के दो तार ये झकार के बिन बोलते हैं,
पढ सभी पाए जिसे वह वर्ण-अक्षरहीन भाषा
प्राणदानी के लिए वाणी यहाँ बधन नही है।
अश्रु यह पानी नही है, यह व्यथा चदन नही है।

किरण सुख की उतरती घिरती नही दुख की घटाएँ,
तिमिर लहराता न बिखरी इद्रधनुषो की छटाएँ
समय ठहरा है शिला-सा क्षण कहाँ उसमे समाते,
निष्पलक लोचन जहाँ सपने कभी आते न जाते,
वह तुम्हारा स्वर्ग अब मेरे लिए परदेश ही है।
क्या वहाँ मेरा पहुँचना आज निर्वासन नही है?
अश्रु यह पानी नही है, यह व्यथा चदन नही है।

ऑसुओ के मौन मे बोलो तभी मानूँ तुम्हे मैं,
खिल उठे मुस्कान मे परिचय, तभी जानूँ तुम्हे मैं,
सॉस मे आहट मिले तब आज पहचानूँ तुम्हे मैं,
वेदना यह झेल लो तब आज सन्मानूँ तुम्हे मैं।
आज मदिर के मुखर घडियाल घटो मे न बोलो
अब चुनौती है पुजारी मे नमन वदन नही है।
अश्रु यह पानी नही है, यह व्यथा चदन नही है।

गीत

दु ख आया अतिथि द्वार
        लौटा न दो।
तुम नयन-नीर उर-पीर
        लौटा न दो।

स्वप्न का क्षार ही
        पुतलियो मे भरा,
दृष्टि विस्तार है
        आज मरु की धरा,
        दु ख लाया अमृत सिंधु म डूबकर
        यह घटा स्नह-सौगात
                लौटा न दो।

प्राण अभिशप्त हा
        बन गए हैं शिला
न उम पर रुका पल
        न युग ही चला,
        दु ख की पगछुवन शाप की मुक्ति है
        कह इसे तुम पक्षघात
                लौटा न दो।

उड गए भाव के
हस मोती पले,
सूखता मान-सर
साँस के तट जले
दु ख ने शिव जटा से निचोडा जिसे
तुम वही पुण्य जल आज
लौटा न दो।

यह गगन नीलिमा है
सदय छाँह-सी,
यह क्षितिज-रेख घेरे
सुहृद बाँह-सी,
स्वर्ण जूही विपिन-सी उतरती किरण,
तुम समझकर प्रलयरात
लौटा न दो।

दु ख आया अतिथि आज
लौटा न दो।
तुम नयन-नीर उर-पीर
लौटा न दो।

दीपक*

धूलि के जिन लघु कणों में है न आभा प्राण,
तू हमारी ही तरह उनसे हुआ वपुमान।

आग कर देती जिसे पल मे जलाकर क्षार,
है बनी उस तूल से वर्ती नइ सुकुमार।

तेल में भी है न आभा का कहीं आभास,
मिल गए सब तब दिया तूने असीम प्रकाश।

धूलि से निर्मित हुआ है यह शरीर ललाम,
और जीवन-वर्ति भी प्रभु से मिली अभिराम।

प्रेम का ही तेल भर जो हम बनें निःशोक,
तो नया फैले जगत के तिमिर में आलोक।

*दीपक पर पहली कविता सन 1916

बीज से

कहाँ ऊग आया है तू ह बीज अकेला?

यह वह धरती ग्ही सभी को जो अपनाती,
नही किसी को गोद बिठाने मे सकुचाती,
ऊँच-नीच का जिसमे कोई भेद नही है
इसमे आकर प्राण मुक्त प्राणों से खेला।

सघन छाँहवाले हो चाहे नीम-महावट,
अमृत फलवाले हो चाहे आम्र-आमलक,
इन विशाल तरुआ का सगी बना लिया है,
जिसने अक बिठाकर अपने लघु दूर्वादल!
इस माटी मे सदा सृजन का लगता मेला!

नीर-क्षीर से पाल इन्ह नव जीवन देती,
जो मुरझाते उन्हें स्नेह-आश्रय म लेती,
नही माधवी सुरभित या अगर लताएँ,
इसने तो काँटोवाली झाडी को झेला।

स्नेह-तरल माटी म ही तो रहता जीवन
ये तो हैं पाषाण सभी सूखे नीरस मन।

अब न प्रतीक्षा कर स्नेहिल धरती माता की,
अब मत कर मनुहार मेघ जीवनदाता की,
अपने ही पौरुष मे है तू आज दुकेला।

पग नीचे पाषाण चाँपकर शिर ऊँचा कर,
खेल चुनौती रवि की, नभ की आज न तू डर,
वे ही ऊँचे उठे बढ़े जो मौन अकेले,
उनसे ही यह काल सदा सगी-सा खेला।
कहाँ ऊग आया है तू हे बीज अकेला।

गीत

वदना यह प्राण छदस की सजल अक्षय कला है।

सीपियाँ अनगिन रहीं
कल्पान तक मुख मौन खोल
स्वातियों ने नप किया
शत चातकों के कठ बोल!
पर पता पाया न इसका,
भार झिल पाया न इसका,
अश्रु-मोती काल की निस्सीम सीपी मे ढला है।

युग-युगों होता रहा
चिर विश्व मन का गरल-मथन
हर लहर पर तैरता
आया चला यह रत्नकर कण,
पर न पहचाना किसी ने
गरल ही माना सभी ने
यह अमृत का घूँट विष के सात सागर में पला है।

नाप आया साँस का विस्तार
सपन तौल आया

सत्य था अनमोल उसको
आज यह विनमोल नाया
शीश पर चिर सजल घन है
चरण तल अगार-वन है
किंतु दुख-पयी हृदय से आंख तक कवल चला है।

गीत

तुम तो हारे नही तुम्हारा मन क्या हारा है?

कहते हैं ये शूल चरण मे बिधकर हम आए,
किंतु चुभे अब कैसे जब सब दशन टूट गए,
कहते हैं पाषाण रक्त के धब्बे हैं हम पर,
छाले पर धोएँ कैसे जब पीछे छूट गए?
यात्री का अनुसरण करे
इसका न सहारा है।
तुम्हारा मन क्या हारा है?

इसने पहिन बसती चोला कब मधुवन देखा?
लिपटा पग से मेघ न बिजली बन पाई पायल,
इसने नही निदाघ चाँदनी का जाना अतर
ठहरी चितवन लक्ष्यबद्ध, गति थी केवल चचल।
पहुँच गए हो जहाँ विजय ने
तुम्हे पुकारा है।
तुम्हारा मन क्यो हारा है।

गीत

क्यो पाषाणी नगर बसाते हो जीवन म?

माना सरिता नही,
नही कोई निर्झरिणी,
तपते दिन की ज्वाला म
झुलसी है धरिणी,
नही ओस का कण भी क्या अब रहा गगन मे?

नही मजरित आम
नही कोकिल का गायन,
पल्लव - मर्मर नही
नाचते नही शिखी गण,
क्या न जगाते तुम्ह काक भी अपने स्वन म?

खिलते पाटल नही
न चपक वन फूल हैं
इस पथ को तितलियाँ
भ्रमर के दल भूल हैं।
पर काँटो की चुभन नही है क्या इस वन म।

माना चदन - वन से
जा सुरभित हा आता,

इस उपवन में पवन
नही आता लहराता।
पर आँधी भी आज पड गई क्या वधन में?

इस सन्नाटे मे तो
हाहाकार भला है,
नही मरण वह तो
जीवन की ओर चला है।
माना सुख-युग नही वेदन्ग-क्षण हो मन मे।
क्यो पाषाणी नगर बसाते हो जीवन में?

न रथ-चक्र घूमे

न रथ-चक्र घूमे न पग-चाप आई
रहा शून्य मंदिर न तुम दृष्टि आए।

शिलाएँ हुईं रज घिसा नित्य चंदन,
तुम्हें खोजने को सुरभि है प्रवासी,
थके शंख का रुद्ध है कंठ भी अब
अलिंदों भरे फूल हैं आज बासी।
जले दीप ने प्राण अपने बुझाए।
रहा शून्य मंदिर न तुम दृष्टि आए।

तिमिर-सिंधु में पोत-सी खो गई है
अजर वेदिका की अमिट वज्र रेखा,
अगरु-धूम ने उठ क्षितिज को मिटाया
कलश का ग्रहण बन गई भस्म लेखा।
तभी तो हमी ने गढ़ी मूर्ति अपनी
तभी तो नए साज अपने सजाए।
रहा शून्य मंदिर न तुम दृष्टि आए।

लगाकर तिलक शुभ्र श्रम बिंदुओं का
सजा अंग पर मृत्तिका अंग-लेपन,

बिंधे शूल से और छाले सँजोए,
लिए पग थके, पर लिए अनथका मन,
हमी वेदिका पर तुम्हारी विराजे
तुम्हारे उपासक हमी पर लुभाए।
रहा शून्य मंदिर न तुम दृष्टि आए।

न हम मुक्ति-वर की प्रथा जानते हैं
दृगो मे लिए अश्रु-सजीवनी हैं,
जहाँ गिर गई बूँद धरती हरी है
नई भूमिका नव सृजन की बनी है।
न जाना तुम्हे औ' न पहचान पाए
तुम्ही मुग्ध हो प्राण म आ समाए।
रहा शून्य मंदिर न तुम दृष्टि आए।

भल, साँस के तार दुहर रहग
लगा धूप-नैवेद्य मेला रहेगा,
मगर शख मे जय-कथा है हमारी
यही देव-विग्रह अकला रहेगा।
हमारी सजल दृष्टि ने दीप बाले
तुम्हारी हँसी मे सुमन मुस्कराए।
रहा शून्य मंदिर न तुम दृष्टि आए।

गीत

वीणावादिनि! कस लिया आज क्या अग्नि-तार?
आँखों का पानी चढ़ा-चढ़ा कर अग्नि-तार।

रवि-शशि-तूबो मे विकल रागभीनी आँधी,
नक्षत्र-खूँटियो पर किरणे खीची बाँधी,
आघातों पर खुलते जीवन के रुद्ध द्वार।

चिनगारी - केसर लौ - मरन्द, आभा - कुड्मल,
हैं झूम रहे स्वर-ग्रामो के चचल अलि-दल,
तेरा लपटो का कमल खिला है सहस्रार।

तेरे सकल्पो की प्रतिमा जा शुभ्र गात
वह हस हो गया विद्युत् का खग ज्वाल-स्नात।
पखो को छू नम हुआ अर्चि का हरसिंगार।

झकार-मूर्च्छना क कूलो पर ठहर ठहर,
भू-नभ छू लेती राग-सिन्धु की मुक्त लहर,
तालो पर उठता-गिरता है आलोक-ज्वार।

कण आज बह चले बन स्वप्नो के ज्वलित दीप,
क्षण ठहर गए बन कर गीतो के मुखर सीप,
नभ कहता मुझको आज धरा पर दो उतार।

वीणावादिनि। कस लिया आज क्या अग्नि-तार।

गीत

नही हलाहल शेष, तरल ज्वाला से अब प्याला भरती हू।

विप तो मैंने पिया, सभी को व्यापी नीलकण्ठता मेरी,
घेरे नीला ज्वार गगन को, बाँधे भू को छाँह अँधेरी,
सपने जम कर आज हो गए चलती-फिरती नील शिलाएँ,
आज अमरता के पथ को मैं
जल कर उजियाला करती हूँ।

हिम से सीझा है यह दीपक आँसू से बाती है गीली,
दिन के धनु की आज पडी है क्षितिज-शिजनी उतरी ढीली,
तिमिर कसौटी पर पैना कर चढा रही मैं दृष्टि-अग्निशर,
आभा-जल म फूट बहे जो
हर क्षण को छाला करती हूँ।

पग मे सौ आवर्त बाँध कर नाच रही घर-बाहर आँधी
सब कहते हैं यह न थमेगी, गति इसकी न रहेगी बाँधी,
अगारों को गूँथ बिजलियो में, पहना दूँ इसको पायल,
दिशि-दिशि को अर्गला
प्रभजन ही को रखवाला करती हूँ।

क्या कहते हो अधकार ही देव बन गया इस मंदिर का?
स्वस्ति। समर्पित इसे करूँगी आज अर्घ्य अगारक-उर का
पर यह निज को देख सके जो देखे मेरा उज्ज्वल अर्चन,

इन साँसों को आज जला मैं
लपटो की माला करती हूँ।

नही हलाहल शेष, तरल ज्वाला से मैं प्याला भरती हूँ।

गीत

चातकी हूँ मैं किसी करुणा-भरे घन की।

खो रहे जिनके तमस मे
ज्योति के खग ज्वाल के शर,
पीर की दीपित धुरी पर
घूमते वे सात अम्बर,
सात सागर पूछते हैं
साध लघु मन की।
चातकी हूँ मैं किसी करुणा-भरे घन की।

जब खुली पाँखे दिवस ने
पाल लपटो के समेटे,
जब मुँदी आँखे गगन के
स्वप्न भू से, उतर भेटे,
अश्रु से मुक्तावती है
सीप रजकण की।
चातकी हूँ मैं किसी करुणा-भरे घन की।

बज रहे हैं रन्ध्र मन के
एक करुण पुकार से भर,
दूब-अक्षर में उभर आए
व्यथा के मौन के स्वर,

प्यास मेरी लौटती
बन छाँह सावन की।
चातकी हूँ मैं अजर करुणा-भरे घन की।

गीत

टकरायेगा नही आज उद्धत लहरा से,
कौन ज्वार फिर तुझे पार तक पहुँचायेगा?

अब तक धरती अचल रही पैरो के नीचे,
फूलो की दे ओट सुरभि के घेरे खीचे,
पर पहुँचेगा पथी दूसरे तट पर उस दिन
जब चरणो के नीचे सागर लहरायेगा।
कौन ज्वार फिर तुझे पार तक पहुँचायेगा?

गर्त शिखर बन उठे लिए भँवरों का मेला,
हुए पिघल ज्योतिष्क तिमिर की निश्चल वेला,
तू मोती के द्वीप स्वप्न मे रहा खोजता,
तब तो बहता समय शिला-सा जम जायेगा।
कौन ज्वार फिर तुझे पार तक पहुँचायेगा?

लौ से दीपित हुईं देव-प्रतिमा की आँखे,
किरणे बनी पुजारी के हित वर की पाँखे,
वज्र-शिला पर गढी ध्वस की रेखाएँ क्या
यह अगारक हास नही पिघला पायेगा?
कौन ज्वार फिर तुझे पार तक पहुँचायेगा?

धूल पोछ काँटे मत गिन छाले मत सहला
मत ठडे सकल्प आँसुओं से तू नहला।

तुझसे हो यदि अग्नि-स्नात यह प्रलय महोत्सव
तभी मरण का स्वस्ति-गान जीवन गायेगा।

टकरायेगा नही आज उन्मद लहरो से
कौन ज्वार फिर तुझे दिवस तक पहुँचायेगा?

गीत —

राह थी अँधेरी पर गीत सग-सग चला।

उठकर आरोह ने बवडर को साध लिया,
उतरे अवरोह ने तरगी को बाँध लिया,
स्वर्ण जुही फूल उठी
जहाँ दीपराग जला।
राह थी अँधेरी पर गीत सग-सग चला।

नापा आलापो ने मूर्च्छना ने तोल लिया,
शूल मे समाकर हर पग को अनमोल किया,
लय ने अगारो पर
चन्दनी पराग मला।
राह थी अँधेरी पर गीत सग-सग चला।

पात गुनगुनाता अब सागर दुहराता है,
बादल अनुवादक, नभ रगो में गाता है,
सीख कौन पाया
अब तक यह छन्द-कला।
राह थी अँधेरी पर गीत सग-सग चला।

स्वर के शत बिम्बों ने एक पल अनन्त किया,
सातो आकाशो के शून्य को वसन्त दिया।

मृत्यु ने इसे न छुआ
काल ने इसे न छला।
गीत सग-सग चला।

महादेवी

सन् 1907 में फर्रुखाबाद (उ प्र) के एक सुप्रतिष्ठ परिवार मे जन्म ।

विश्वविद्यालयी शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सस्कत साहित्य मे एम ए ।

हिंदी के महत्त्वपूर्ण काव्ययुग—छायावाद—के कवि-चतुष्टय मे से एक। प्रेम और करुणा की अजस्र काव्य-निर्झरिणी के लिए 'आधुनिक मीरा -नाम स अभिहित। सस्मरणात्मक रेखाचित्रा के लिए बहुप्रशंसित।

प्रयाग महिला विद्यापीठ की सस्थापिका और फिर लबे अर्मे तक प्राचार्य-पद पर रही। मगलाप्रसाद पारितोषिक (हिंदी साहित्य सम्मेलन), भारत-भारती (उत्तर प्रदेश) तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित। साहित्य अकादमी की फैला रही।

सितबर, 1987 मे देहावसान।

प्रमुख कृतियाँ *नीहार* (1930) *रश्मि* (1932), *नीरजा* (1934), *यामा* (1951) *दीपशिखा* (1954) [कविता-सग्रह] *शृखला की कडियाँ* (1950) [निबध] *स्मृति की रेखाएँ* (1943) *अतीत के चलचित्र* [सस्मरण]।